# इकाई 5 आहार–विहार

**इकाई की रूपरेखा**


5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 आहार–विहार

5.2.1 स्वस्थ दिनचर्या में आहार–विहार

5.2.2 स्वस्थ रात्रिचर्या में आहार–विहार

5.2.3 विभिन्न ऋतुओं में आहार–विहार

5.3 सारांश

5.4 शब्दावली

5.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

5.6 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर


## 5.0 उद्देश्य

आयुर्वेद में स्वस्थवृत्त के अर्न्तगत देश, काल, ऋतु और प्रकृति के अनुरूप आहार–विहार का वर्णन किया गया है। स्वस्थ मनुष्य के स्वास्थ्य की रक्षा करना तथा देश, काल, ऋतु प्रकृति के अनुसार उसके सम्यक् आहार–विहार का उपदेश स्वस्थ जीवन का उद्देश्य है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप–

- स्वस्थ दिनचर्या से परिचित हो जायेंगे।
- स्वस्थ रात्रिचर्या से परिचित हो जायेंगे।
- विभिन्न ऋतुओं में होने वाले आहार–विहार से परिचित हो जायेंगे।
- आप आयुर्वेद की शब्दावली को स्मरण कर पायेंगे।

## 5.1 प्रस्तावना

इकाई संख्या–05 (आहार–विहार) खण्ड–1 (आयुर्वेद के सिद्धांत) के अन्तर्गत आता है। इसके अन्तर्गत आहार–विहार का परिचय दिया जायेगा। आयुर्वेद में दिन और रात्रि तथा विभिन्न ऋतुओं के आचरण (आहार–विहार) का उल्लेख किया गया है, जिसे स्वस्थ वृत्त के नाम से जाना जाता है। इस स्वस्थ वृत्त को दिनचर्या (दिन और रात्रि) में सेवन करने योग्य व न सेवन करने योग्य (आहार–विहार) इन दो भागों में बाँटा गया है। इनके अनुसार आचरण करने से जहाँ स्वास्थ्य की रक्षा होती है वहीं रोगों के आक्रमण से भी बचा जा सकता है। दिन के अलग–अलग समय तथा वर्षा की अलग–अलग ऋतुओं में अलग–अलग दोषों (वात, पित्त, कफ) का संचय, प्रकोप और शमन स्वाभाविक रूप से होता रहता है। देश, काल ऋतु और अपनी प्रकृति के

अनुसार आहार–विहार करने से तीनों दोष प्राकृत अवस्था में (सम) बने रहते है। अग्नि भी सम बनी रहती है तथा मल (स्वेद–मूत्र–पुरीष) की क्रिया भी सम रहती है अर्थात् मलादि का निष्कासन उचित समय तथा उचित मात्रा में होता है तथा इन्द्रियाँ मन और आत्मा प्रसन्न रहते है। इस प्रकार शरीर में किसी भी प्रकार की विषम स्थिति नहीं होती है तथा मनुष्य के शरीर की सभी क्रियाएँ प्राकृत रूप में होती रहती है तथा शरीर में विकार उत्पन्न नहीं होते। मनुष्य सदैव ही स्वस्थ रहता है।

अतः इस इकाई 'आहार–विहार' में 'स्वस्थ दिनचर्या में आहार–विहार' के अन्तर्गत प्रातः उत्थान, उषा पान, मलोत्सर्ग एवं सफाई, दन्तधावन, जीभ प्रक्षालन एवं मुखादि धावन, नस्य, गण्डूष एवं अभ्यंग कर्म, क्षौर कर्म एवं शरीर परिमार्जन, स्नान एवं ईशध्यान, आहार, सदवृत्त या आचरण का अध्ययन किया जायेगा एवं 'रात्रिचर्या में आहार–विहार' के अन्तर्गत रात्रिकालीन आहार, निद्रा एवं ब्रह्मचर्य पर प्रकाश डाला जायेगा। इसके साथ ही विभिन्न ऋतुओं–वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त एवं शिशिर ऋतु में सेवन करने योग्य आहार–विहार का अध्ययन किया जायेगा, जिसके माध्यम से सम्पूर्ण आयुर्वेदिक सिद्धांत के अन्तर्गत आहार–विहार के योगदान को स्वस्थ मनुष्य के जीवन में कितना महत्त्व है इसको समझने में सरलता होगी।

आयुर्वेद जनहितकारी प्रत्यक्ष भारतीय शास्त्र है। भारतीय वाङ्गमय के वर्गीकरण के अनुसार आयुर्वेद की गणना उपवेदों में है। वेदों के मन्त्र और उनसे प्रतिपादित यज्ञ–यागादि क्रियाओं की विधि अलौकिक है, इसीलिए अपरिवर्तनीय है। आयुर्वेद भी वेद है, इसमे भी जो निर्देश द्रव्य, ऋतु, समय, मानव प्रकृति आदि के हैं, वे अलौकिक तथा सामान्यतया अपरिवर्तनीय हैं। अलौकिक शब्द का अभिप्राय मानव रचना से परे है। प्राकृतिक औषधियों में गुण, ऋतु और समय का प्रभाव तथा मानव का वात, पित्त, कफादि प्रकृति–रचना मानव रचना की परिधि में नहीं है।

आयुर्वेद के अपरिवर्तनीय सिद्धांतों के आधार पर ही इसे नित्य एवं सत्य विज्ञान कहा गया है। इसके साथ ही यह विश्व का आदि चिकित्सा विज्ञान है, किन्तु भारतीय ऋषियों द्वारा परिभाषित एवं प्रकाशित करने के कारण इसे भारतीय चिकित्सा विज्ञान कहा गया है।

आयुर्वेद के सिद्धांत पाठ्यक्रम का प्रथम खण्ड है। इस खण्ड में छः इकाईयाँ है। प्रस्तुत इकाई में आहार–विहार एवं अगली इकाई आयुर्वेद की पद्धति–पुनर्वसु आत्रेय एवं धनवंतरि नामक दो पद्धतियों के विचारधारा से सम्बन्धित है। तकनीकी और कठिन शब्दों में स्पष्ट करने के लिए प्रत्येक इकाई में आवश्यक शब्दावली दी गयी है साथ ही अध्ययन में सहायक उपयोगी पुस्तकों की सूची प्रत्येक इकाई के अन्त में दी गयी है। जिनके सहयोग से आप सम्बन्धित विषय का और अधिक अध्ययन कर सकते है।

## 5.2 आहार–विहार

आहार–विहार के सन्दर्भ में भगवान श्री कृष्ण ने भी कहा है कि–

**युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।**

**युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवतिर्दुखहाः।।**

अर्थात् जिसका आहार–विहार सम्यक है, कर्म में जिसकी चेष्टा सम्यक् है तथा जो यथा योग्य सोता–जागता है उसका इस प्रकार के योग से दुःख समाप्त हो जाता है।

**आहार–**

आहार के विषय में महर्षि चरक का एक दृष्टान्त बहुत ही सुन्दर है कि एक बार महर्षि चरक ने अपने शिष्यों से पूछा, कोऽरूक, कोऽरूक, कोऽरूक? कौन रोगी नहीं अर्थात् स्वस्थ कौन हैं? महर्षि के प्रबुद्ध शिष्य वाग्भट ने उत्तर दिया, हितभुक्, मितभुक्, ऋतुभुक् अर्थात् जो व्यक्ति हितकारी, उचित एवं ऋतु के अनुकूल भोजन करता है वही निरोगी है। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी प्रकृति (वात, पित्त एवं कफ) को जानकर उसी के अनुसार भोजन करना चाहिए–

**आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धौ ध्रुवास्मृतिः।**

**स्मृति लब्धे सर्व ग्रन्थीनां विप्रमोक्षः।।**

अर्थात् आहार की शुद्धि से सत्व शुद्ध होता है। सत्व की शुद्धि से स्मृति स्थिर होती हैं। स्मृति के स्थिर होने से ग्रन्थि भेदन होकर मोक्ष प्राप्त हो जाता है।

**विहार–**

जहाँ तक शरीर को स्वस्थ और व्याधि–प्रतिबन्धित रखने के लिए ब्राह्य जीवनोपयोगी कर्म समुदाय का सम्बन्ध है, वह सब आयुर्वेद में योगारुढ़ संज्ञा के आधार पर विहार के नाम से जाना जाता है।

## 5.2.1 स्वस्थ दिनचर्या में आहार–विहार

संस्कृत में दैनिक कार्यक्रम को दिनचर्या कहते है। दिन का अर्थ दिन का समय है और चर्या का अर्थ उसका पालन करना या उसके निकट रहना। दिनचर्या का आदर्श दैनिक कार्यक्रम है जो प्रकृति के चक्र का ध्यान रखती है। आयुर्वेद प्रातःकाल के समय पर केन्द्रित होता है क्योंकि वह पूरे दिन को नियमित करने में महत्त्वपूर्ण है–**'प्रतिदिनं कर्तव्याचर्या दिनचर्या'** अर्थात् आयुर्वेद का मानना है कि दिनचर्या शरीर और मन का अनुशासन है और इससे प्रतिरक्षा तंत्र मजबूत और मल पदार्थो से शरीर शुद्ध होता है। स्वस्थ दिनचर्या आहार–विहार के नियम इस प्रकार हैं–

1) **प्रातः उत्थान–**

नित्य ही सूर्योदय से पहले गर्मी के दिनों में 4 बजे और सर्दी के दिनों में 5 बजे विस्तर त्याग देना चाहिए। आचार्य मनु ने कहा है कि–

**ब्राह्मे मुहुर्ते बुध्येत धर्मानुचिन्तयेत्।**

**कायकलेषांश्च तन्मूलान्वेद तत्वार्थमेवच।।**

**मनुस्मृति, 4/92**

हमारे ऋषि मुनियों ने सूर्योदय से 4 घड़ी पूर्व का समय निश्चित किया है। क्योंकि सूर्योदय से डेढ घंटे पूर्व वातावरण में विशाल उर्जा की गति भर जाती है। इसके पश्चात् प्राचीन परम्परा का पालन करते हुए अपनी हथेली की रेखाओं को देखे और धन, ज्ञान और शक्ति की देवियों को याद करें–

**कराग्रे वसते लक्ष्मी कर मध्ये सरस्वती।**

**करमूले तु गोविन्दम् प्रभाते शुभ कर दर्शनम्।।**

ब्रह्म मुहुर्त में उठने के पश्चात् पृथ्वी माँ को नमन किया जाता है–

**'समुद्रवसने देवी पर्वतस्तनमण्डले।**

**विष्णुपत्नी नमस्तुभ्यं पादपस्पर्शं क्षमस्व मे।।'**

**2) उषा पान**

बह्ममुहुर्त में उठकर उषापान करना चाहिए। आयुर्वेद शास्त्र में नासाछिद्र से ब्रह्ममुहुर्त में पानी पीना उषा पान कहलाता है। उषा पान के लिए समशीतोष्ण जल का प्रयोग किया जाता है। इसके लिए कूप का जल सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। भावप्रकाश में भावमिश्र ने लिखा है कि–

**सवितुः समुदयकाले प्रसृतिसलिलस्य पिवेदेष्टौ।**

**रोग जरा परिमुक्तो जीवेदवत्सरशतं साग्रम।।**

**3) मलोत्सर्ग एवं सफाई–**

प्रातःकाल मल–मूत्र आदि का विसर्जन करने से दीर्घायु प्राप्त होती है क्योंकि इनसे पेट की गुड़गुड़ाहट, अफरा और भारीपन आदि सब दूर हो जाते है। मल को रोकने से पेट का फूलना, शूल, गुदा में कतरन के सदृश पीड़ा होती है तथा मल का अवरोध होता है। डकार आने लगती है अथवा मुख में से बदबू निकलने लगती है। अधोवायु को रोकने से पेट में वायु सम्बन्धी अन्य रोग भी उत्पन्न हो जाते है।

मूत्र रोकने से मूत्राशय में तथा लिङ्ग में शूल होता है। मूत्र कृच्छ, मस्तक में दर्द, शरीर की नम्रता और तंक्षण का सम्पूर्ण संधियों में खीचने सदृश पीड़ा होती है। मलमूत्र का वेग हो तो मलमूत्र का त्याग करना चाहिए। इससे पहले अन्य कार्य न करें।

**4) दन्तधावन, जीभ प्रक्षालन एवं मुखादिधावन–**

**दन्तधावन**–बारह अंगुल लम्बी कनिष्ठिका अंगुली के अग्रभाग की तरह मोटी, सीधी गाँठ और छिद्र रहित दातुन से एक–एक दाँत को घिसे। यह दातुन आक, वट, खैर, करंज, सर्ज, अर्जन इत्यादि वृक्षों की या कषाय, कटु, तिक्त रस वाली जिसका अग्रभाग कोमल हो जिससे कोमल मसूड़ो को हानि नहीं होना चाहिए। इस प्रकार दातुन करने से मुख विरसता (वेजायकेपन) दाँत, जीभ तथा मुँह के रोग नहीं होते है। रुचि, स्वच्छता और शरीर में हल्कापन होता है।

**जिह्वा प्रक्षालन**–इसके पश्चात् जीभ के मैल को साफ करे। जीभी साफ करने के लिए जीभी चाँदी की, ताँबे की बनवाये और यदि यह न मिले तो कोमल, स्निग्ध जीभी से साफ करे जिससे इसका मैल, विरसता, दुर्गन्धता और जड़ता दूर हो जाती है। शीतल जल से बराबर कुल्ला करें जिससे कफ, तृषा और मल दूर हो जाता है तथा भीतर से मुख स्वच्छ होता है।

**मुखादि धावन**–लोध, आमलक आदि को उबालकर उस पानी से मुख एवं आखों को धोना चाहिए। इससे मुख की स्निग्धता दूर होती है। मुहाँसे, झाईयाँ नहीं होते, चेहरा कांतिमय बनता है। आँखे साफ–स्वच्छ होता है।

**5) नस्य, गण्डूष एवं अभ्यंग कर्म–**

**नस्य कर्म**–नस्य कर्म हेतु रोज सुबह 2–3 बूँद गरम करके ठण्डा किया हुआ सरसों या तिल का तेल नाकों में डालना चाहिए। नाक में तेल डालने से सिर, आँख, नाक के रोग नहीं होते। नेत्र ज्योति बढ़ती है। बाल काले–लम्बे होते हैं। समय से पूर्व न झड़ते एवं न सफेद होते है।

**गण्डूष कर्म**–गण्डूष कर्म हेतु मुख में असंचारी द्रव्य की मात्रा होती है और कवच उसे कहते है; जिसमें द्रव्य की मात्रा मुख दाये से बाये फेरी जाती है। इसके लिए तिल या सरसों के प्रयोग को उत्तम कहा गया है। गण्डूष से ओंठों का फटना, मुख का सूखना, दाँतों के रोग तथा स्वरादि भेद नहीं होता है। अरुचि, मुख की विरसता, मलिनता, दुर्गन्धता इत्यादि का नाश होता है।

**अभ्यंग कर्म**–अभ्यंग आयुर्वेदिक चिकित्सा का एक रूप है जिसमें शरीर को गुनगुने तेल से मालिश की जाती है। इसमें तेल की मात्रा अधिक होती है और उसमें कुछ औषधि भी मिलाई जाती है। अभ्यंग (मालिश) शरीर और मन की उर्जा का संतुलन बनता है, शरीर का तापमान नियंत्रित करता है इसके साथ ही रक्त प्रवाह और दूसरे द्रवों के प्रवाह में सुधार करता है। शरीर के सभी विषैले तत्त्व बाहर निकल जाते है।

**6) क्षौरकर्म एवं शरीर परिमार्जन–**

**क्षौरकर्म**– नित्य व्यायाम के समान ही नियमित रूप से क्षौर कर्म करना चाहिए। आचार्य सुश्रुत ने कहा है कि क्षौर कर्म का शमन करने वाला हर्षोत्पादक सौभाग्य समझकर करना चाहिए। अतः नियम पूर्वक प्रतिदिन क्षौरकर्म करना चाहिए। प्रतिदिन दाढ़ी बनाने से स्फूर्ति आती है; तथा महीने में एक बार बाल कटाने चाहिए।

**शरीर परिमार्जन**–शरीर को परिमार्जित करने हेतु उद्धर्तन, उत्सादन, उदघर्षण, फेनक आदि विधियों द्वारा शरीर को स्वच्छ रखने को शरीर परिमार्जन कहते है। अस्निग्ध अर्थात् बिना तैलादि किये हुए रुक्ष चूर्ण को अंगों पर मलना उदघर्षण या उत्सादन है। यह परममेदहर है। स्नेह मिश्रित औषधि कल्क को शरीर पर लगाना उद्धर्तन या उबटन कर्म है। यह त्वचा के वर्ण को निखारता है।

**7) स्नान एवं ईश ध्यान–**

**स्नान**–स्नान कर्म अग्नि को प्रदीप्त करने वाला, शक्ति, आयु और ओज को बढ़ाने वाला उत्साह तथा बल को देने वाला, खुजली, मैल, आलस्य, तृषा, दाह तथा पाप को दूर करता है। शीतल जल आदि से सीचने से शरीर के बाहर की गर्मी पीड़ित होकर भीतर आती है। इसलिए स्नान करते ही भूख लग जाती है। रक्त पित्त दूर होता है। उष्ण जल में स्नान करने से बल बढ़ता है एवं वात, पित्त तथा कफ का नाश होता है। सिर पर अत्यन्त गर्म जल से स्नान करना सदा आँखों के लिए बुरा होता है। जो व्यक्ति शरीर में आँवले मलकर स्नान करता है वे सौ वर्ष जीते है। स्नान करने के बाद वस्त्र को अंग को खूब रगड़कर पोछना चाहिए। इससे क्रांति बढ़ती है, खुजली और त्वचा के दोष दूर होते है। भोजन के पश्चात् भी स्नान करना ठीक नहीं है।

**ईश ध्यान**–प्रतिदिन प्राणायाम, सूर्योपासना गायत्री मंत्र का जाप एवं इष्ट देव का पूजन करना चाहिए। उपासना करने से मन एकाग्रचित्त होता है जिससे मानसिक

एंव शारीरिक तनाव दूर होता है। तनाव से होने वाली शारीरिक एवं मानसिक व्याधियाँ नहीं होती। ध्यान के लिए स्मरण एंव इष्ट का ध्यान करना चाहिए।

8) **आहार**

आहार शरीर को पुष्ट करने वाला तथा देह को धारण करने वाला तथा बलकारक, आयु, तेज, उत्साह, स्मृति, ओज और अग्नि को बढ़ाने वाला होता है। आयुर्वेद के अनुसार शरीर के तीन मुख्य तत्त्व या प्रकृति होती है–वात, पित्त और कफ। शरीर में जब भी इन तत्त्वों का संतुलन बिगड़ जाता है तो व्यक्ति बीमार हो जाता है। इससे बचने के लिए ऐसा खाना खाने की सलाह दी जाती है जो जल्दी पच जाता हो और पोषक तत्त्वों से भरपूर हो। इसके साथ ही नियमित रूप से संतुलित आहार लेने पर भी जोर दिया गया है। आयुर्वेद के अनुसार खाने में 6 रस होने चाहिए। ये 6 रस हैं–मधुर (मीठा) लवण (नमकीन) अम्ल (खट्टा) कटु (कड़वा), तिक्त (तीखा) और कषाय (कसैला)। शरीर की प्रकृति के अनुसार ही भोजन करना चाहिए। इससे शरीर में पोषक तत्त्वों का असंतुलन नहीं होता है। मनुष्य को सदा थोड़ी मात्रा में खाना चाहिए। आयुर्वेद के अनुसार भोजन दो बार ही करना चाहिए। प्रथम भोजन 12 बजे से पूर्व तथा रात्रि 7 बजे कर लेना चाहिए। भोजन पहले ईश्वर को अर्पित कर प्रसाद रूप में ग्रहण करना चाहिए। भोजन को खूब चबा चबाकर खाना चाहिए तथा भोजन के एक घंटे बाद पानी पीना चाहिए।

9) **सदवृत्त या आचरण**

**त्रिवर्गशून्यं नारम्भं भजेत्तं या विरोधयन'** अर्थात् धर्म, अर्थ और काम से रहित कोई कार्य न करे और इस प्रकार धर्म, अर्थ और काम का सेवन करे जिससे इनमें आपसी विरोध न हो सके। लोकाचार का पालन करे क्योंकि सभी क्रियाओं में समाज ही पथप्रर्दशक होता है। इस प्रकार दिनचर्या के अन्तर्गत ब्रह्म मुहुर्त में उठने से लेकर संध्योपासना, भोजन तथा सदवृत्त तक की चर्चा का वर्णन किया गया। दिनचर्या के पालनीय नियमों का पालन कर मनुष्य उत्कृष्ट व्यक्तित्व, स्वस्थ जीवन, सुखमय जीवन बनाया जा सकता है। पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्त कर आने वाले रोगों से बचा जा सकता है। अतः आज के आधुनिक युग में बढ़ते रोगों के उपशमन हेतु दिनचर्या के पालनीय नियमों को अपनाकर पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्त किया जा सकता है।

## 5.2.2 स्वस्थ रात्रिचर्या में आहार–विहार

आयुर्वेद के प्रसिद्ध आचार्य चरक ने आहार, निद्रा एवं ब्रह्मचर्य को मानव जीवन का उपस्तम्भ कहा जाता है। इन उपस्तम्भों पर मनुष्य का स्वास्थ्य पूर्ण रूप से आधारित होता है। इनका पालन करने से मनुष्य उन्नत स्वास्थ्य को प्राप्त होता है जबकि इनका पालन करने से मनुष्य का स्वास्थ्य निम्न स्तर को प्राप्त होता है तथा उसे नाना प्रकार के शारीरिक एवं मानसिक रोगों का सामना करना पड़ता है। इन तीन उपस्तम्भों आहार, निद्रा एवं ब्रह्मचर्य का रात्रिकाल में विधिपूर्वक पालन करना रात्रिचर्या कहलाती है।

1) **रात्रिकालीन आहार**–संध्याकाल में भोजन कदापि नहीं करना चाहिए। अब प्रश्न उठता है कि रात्रिकाल में भोजन का उत्तम काल कौन सा है? इसे स्पष्ट करते हुए आयुर्वेद के प्रमुख ग्रन्थ भाव–प्रकाश ग्रन्थ में कहा गया है कि–

**"रात्रौ तु भोजनं कुर्यात् प्रथम पहरान्तरे।**

**किचिंदूनं समश्नीयाद् दुर्जरं तत्र वर्जयेत्।।"**

अर्थात् विषम परिस्थितियों को छोड़कर रात्रिकाल के प्रथम प्रहर के अन्त में भोजन कर लेना चाहिए। इस प्रकार रात्रिकाल के प्रथम प्रहर में निम्नलिखित मन्त्र का वाचन करते हुए शुद्ध–सात्विक आहार ग्रहण करना चाहिए–

**ओऽम अन्नपस्तेऽन्नस्य नो देह्वानमीवस्य शुंष्मिणः।**

**प्र प्र दातारं तारिष उर्जा नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे।।**

अर्थात् अन्न के स्वामी ईश, आप हमें रोग रहित एवं पुष्टिकारक अन्न प्रदान करें। आप दानी का उद्धार करते हैं। आप हमारे कुटुम्बियों और पशुओं को उर्जा अर्थात् बल प्रदान करें।

2) **रात्रिकालीन निद्रा**–रात्रिकाल में निद्रा का आना मनुष्य की एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। इस काल में अच्छी प्रकार निद्रा आने से मनुष्य को एक नई ताजगी एवं उर्जा प्राप्त होती है। जबकि इसके विपरीत रात्रिकाल में अच्छी प्रकार निद्रा नहीं आने से मनुष्य के शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। आयुर्वेद के सुप्रसिद्ध आचार्य महर्षि चरक निद्रा के स्वरूप की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि–

**यदा तु मनसि क्लान्ते कर्मात्मानः कलामान्विता।**

**विषयेभ्यो निवर्तन्ते तदा स्वपिति मानवः।।**

अर्थात् मन जब कार्य करते–करते थक जाता है और इन्द्रियाँ भी कार्य करने से थककर अपने विषयों से निवृत्त हो जाती है तब मनुष्य को निद्रा आ जाती है। इस प्रकार आयुर्वेद में निद्रा को विश्राम की वह अवस्था विशेष कहा गया है जिसमें मन एवं इन्द्रियों की अपने–अपने विषयों से मुक्ति हो जाती है। एक स्वस्थ व्यस्क मनुष्य को अहोरात्र (चौबीस घंटे के चतुर्थांश) अर्थात् छः घंटे की निद्रा लेनी चाहिए। इसके लिए रात्रिकाल को चार भागों में विभक्त करें। प्रथम एवं चतुर्थ भाग को छोड़कर मध्य के दो भागों में निद्रा लेनी चाहिए। सदैव पूर्व एवं दक्षिण दिशा में सिर करके शयन करना चाहिए। आयुर्वेद शास्त्र में गीले पैर भोजन एवं सूखे पैर शयन को उत्तम माना गया है। रात्रिकाल में सोते समय प्रेरणाप्रद महापुरुषों के उच्च चरित्र का चिन्तन करना चाहिए तथा सदा मन में सकारात्मक भावों का चिन्तन करते हुए ही शयन करना चाहिए।

3) **रात्रिकाल में ब्रह्मचर्य पालन**–वैदिक वर्णाश्रम का प्रथम आश्रम ब्रह्मचर्य आश्रम है अर्थात् मानव जीवन का प्रारम्भ इसी आश्रम से होता है किन्तु इसका सम्बन्ध के बल जीवन के पच्चीस वर्ष से ही नहीं होता है अपितु यह जीवन पर्यन्त पालनीय अभ्यास है। रात्रिचर्या के अन्तर्गत रात्रिकाल में ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए विधिपूर्वक सन्तानोत्पत्ति करने का निर्देश किया गया है। महाभारत के रचयिता महर्षि वेदव्यास विषमेन्द्रिय द्वारा प्राप्त होने वाले सुख के संयम पूर्वक त्याग करने को ब्रह्मचर्य की संज्ञा देते है। सामान्य रूप से प्रजनन इन्द्रिय पर संयम को ब्रह्मचर्य के अर्थ के रूप में वर्णित किया जाता है। ब्रह्मचर्य का अर्थ शरीर की सबसे महत्त्वपूर्ण शुक्र धातु की संयमपूर्वक रक्षा करने से भी होता है। इस प्रकार ब्रह्मचर्य को विभिन्न अर्थों में अभिव्यक्त किया जाता है किन्तु मूल रूप से इसका

आशय इन्द्रिय पर संयम रखते हुए शरीर की महत्त्वपूर्ण धातु की संयमपूर्वक रक्षा करना होता हैं। इस प्रकार भारतीय दर्शन में ब्रह्मचर्य पालन को जीवन के एक अत्यन्त अनिवार्य अंग के रूप में वर्णित किया गया है। ब्रह्मचर्य पालन से शरीर में बल, तेज, उत्साह एवं उमंग की वृद्धि होती है। इसके साथ ही शरीर में रोग प्रतिरोधक क्षमता प्रबल बनी रहती है एवं शरीर समस्त रोगों से मुक्त बना रहता है। इसके साथ ही मन में धैर्य का विकास होता है जिससे वह प्रतिकूल विषम परिस्थितियों, कठिनाइयों एवं विपत्तियों का सामना करता है। ब्रह्मचर्य के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए अथर्ववेद में कहा गया है कि–**'ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाहत।'** इस प्रकार रात्रिचर्या के तीन महत्त्वपूर्ण करणीय कर्म रात्रिकालीन आहार, निद्रा एवं ब्रह्मचर्य का ज्ञान प्राप्त होता है।

## 5.2.3 विभिन्न ऋतुओं में आहार–विहार

आयुर्वेद जीवन का वह विज्ञान है जिसमें मनुष्य की सुखायु को बढ़ाने एवं दुःखायु को कम करने का उपदेश दिया गया है। आयुर्वेद शास्त्र में मनुष्य की सुखायु को बढ़ाने हेतु प्रत्येक ऋतु में शरीर में दोषों की स्थिति को स्पष्ट करते हुए इन दोषों को सम बनाये रखने हेतु आहार–विहार पर प्रकाश डाला गया है। इस प्रकार उपरोक्त तथ्यों को समझने के लिए आपके मन में वर्ष की अलग–अलग ऋतुओं अर्थात् ऋतु विभाजन के विषय में जानने की जिज्ञासा अवश्य ही उत्पन्न हुई होगी। वर्ष के एक छोटे कालखण्ड को 'ऋतु' के नाम से जाना जाता है अर्थात् ऋतु वर्ष का मौसम के आधार पर विभाजित समयान्तराल विशेष होता है। साधारण शब्दों में वर्ष की वह समयावधि जिसमें वायु का तापमान एवं आर्द्रता एक निश्चित एवं निर्धारित स्थिति में रहती है, 'ऋतु' कहलाती है। इस अवधि विशेष को मौसम के नाम से जाना जाता है।

**ऋतु विभाजन का काल**–वर्तमान समय में अंग्रेजी कलैण्डर का प्रयोग अत्यन्त व्यावहारिक रूप से समाज में किया जाता है। आयुर्वेद शास्त्र और अंग्रेजी कलैण्डर के ऋतु विभाजन में एक–एक प्रमुख समानता यह है कि इन दोनों स्थानों पर वर्ष को बारह महीनों में बाँटा गया है अर्थात् प्राचीन आयुर्वेद में एक वर्ष को बारह माह और छः ऋतुओं में विभाजित किया गया है– वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त एवं शिशिर है।

### 5.2.3.1 वसन्त ऋतु में आहार–विहार

इस ऋतु का प्रारम्भ सर्दी के अधिकता से होता है, सामान्य रूप से यह काल गर्मी और सर्दी की समतुल्यता का काल है। इस काल में मौसम सुहावना बना रहता है प्रकृति में पतझड़ के उपरान्त नवजीवन का आरम्भ इसी ऋतु से होता है। इस ऋतु को सभी ऋतुओं में प्रधान मानते हुए ऋतुराज की संज्ञा दी गयी है। इस ऋतु में धीरे–धीरे सूर्य की रश्मियों की तीव्रता बढ़ने लगती है।

वसन्त ऋतु शिशिर ऋतु के पश्चात् आती है। शिशिर ऋतु में स्निग्ध आहार का अधिक सेवन करने से शरीर में कफ का संचय हो जाता है। इसलिए कहा भी गया है कि–

**वसन्ते निचितः श्लेष्माः दिन कृद्धाभिरीरितः।**

**कामाग्निं वाधते रोगांस्ततः प्रकुरुते .....।।**

वसन्त ऋतु में जब सूर्य रश्मियाँ तीव्र होने लगती है तब यह संचित कफ इन रश्मियोंसे तृप्त होकर जल स्वरूप होने लगता है। कफ का यह जल स्वरूप जठराग्नि को मंद कर देती है। इस काल में जठराग्नि के मंद होने से अनेक प्रकार के रोगों की उत्पत्ति होती है। खाँसी, जुकाम, नजला, दमा टॉसिल्स आदि इस काल के प्रमुख रोग है।

1) **आहार–**इस ऋतु मे रुखे, कसैले, तिक्त रसों का सेवन करना चाहिए। सोंठ के क्वाथ का सेवना करना चाहिए। मधु मिश्रित जल तथा नागरमोथा से बना क्वाथ हितकारी है। इस ऋतु में ताजा हल्का और सुपाच्य भोजन करना चाहिए। मूँग, चना और जौ की रोटी, पुराना गेहूँ और चावल, मक्खन लगी रोटी, हरी साग–सब्जी एवं उनका सूप तथा सरसों के तेल का सेवन करना चाहिए। हिरण, खरगोश, काला हिरन, काला बटेर, सफेद तीतर के मांस का भोजन तथा उत्तम कोटि के शराब, गन्ने की रस की शराब, महुआ के रस की शराब सेवन करना चाहिए। सब्जियों में करेला, लहसुन, पालक, केले, जिमीकंद व कच्ची मूली, नीम की नई कोपिले, सोंठ, पीपल, काली मिर्च, हरड़–बहेड़ा–आँवला, नीबू, मौसमी फल तथा शहद का प्रयोग करना चाहिए। जल अधिक मात्रा में पीना चाहिए। इस ऋतु में कफ निःसारक औषधियों का सेवन करना चाहिए। इस काल में यौगिक षट्कर्मों के अभ्यास द्वारा शरीर का शोधन करना चाहिए। इस ऋतु में शंख प्रक्षालन क्रिया के द्वारा भी शरीर शोधन करने का उपदेश यौगिक शास्त्रों में किया गया है।

2) **विहार–**वसन्त ऋतु में प्रातः एवं सायंकाल शीतल एवं सुगन्धित वायु बहती है अतः इन दोनों कालों में भ्रमण करने का उपदेश करते हुए कहा गया–**'बसन्ते भ्रमणे पथ्ये'** अर्थात् वसन्त ऋतु में भ्रमण करना हितकारी होता है। इस ऋतु में सूर्योदय पूर्व भ्रमण करना चाहिए तथा साफ स्वच्छ श्वेत वस्त्रों को धारण करना चाहिए। इस ऋतु में तेल मालिश करके तथा उबटन लगाकर गुनगुने पानी से स्नान करना हितकारी माना गया है। औषधियों से तैयार धूम्रपान तथा आँखों में अंजन का प्रयोग करना चाहिए। स्नान करते समय मल–विसर्जक अंगों की सफाई ठीक प्रकार से करनी चाहिए। स्नान के बाद शरीर पर कपूर, चन्दन, अगरू, कुमकुम आदि सुगन्धित पदार्थों का लेप करना चाहिए। वसन्त ऋतु में पुष्पित और पल्लिवित वनों उद्यानों तथा स्त्री के यौवन सुख का अनुभव करना चाहिए।

**व्यायामोद्वर्तनं घूमं कवलग्रहमंजनम्।**

**सुखाम्बुना शौचविधिं शीलयेत् कुसुमागमे।।**

**चन्दनागुरूदिग्धाङ्गो यवगोधूमभोजनः।**

**शारभं शाशमैणेयं माँस लावकपिजंलम्।।**

**भक्षयेन्निर्गदं सीधु पिबेन्माध्वीकमेव वा।**

**वसन्तेऽनुभवेत्स्त्रीणां काननानां च यौवनम्।।**

**चरकसंहिता सूत्र स्थान, 6/24, 25, 26**

### 5.2.3.2 ग्रीष्म ऋतु में आहार–विहार

यह वसन्त ऋतु के बाद की ऋतु होती है जिसका प्रारम्भ ज्येष्ठ माह से होता है। यह ऋतु ज्येष्ठ और आषाढ़ माह से होती है। अंग्रेजी कलेण्डर के महीनों के अनुसार ग्रीष्म ऋतु का काल 16 मई से प्रारम्भ होकर 15 जुलाई तक होता है।

ग्रीष्म ऋतु हीन शारीरिक स्वास्थ्य की ऋतु है। जिसमें दोषों के विषय होने की संभावना भी अधिक होती है। अतः इस ऋतु में आहार–विहार पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

1) **आहार**–इस ऋतु में मधुर रस युक्त एवं शीतल प्रकृति के आहार का सेवन करना चाहिए। इसमें संतरा, अंगूर, तरबूज, खरबूजा, लौकी, तुरई, मीठी दही, बेल का शरबत, नीबू पानी, नारियल पानी आदि का सेवन करने से दोष सम अवस्था में बने रहते है और शारीरिक बल बना रहता है। इस ऋतु में मिट्टी के घड़े अथवा सुराई में रखे बासी व ठंडे पदार्थों का सेवन करना चाहिए। इस ऋतु में फ्रिज के ठंडे जल अथवा फ्रिज में रखे ठंडे खाद्य पदार्थों का सेवन करने से शरीर में संचित वात दोष तुरन्त कुपित हो जाता है और जोड़ों में दर्द, सूजन–गठिया व आर्थटाइटिस आदि रोग जन्म ले लेते है। इस ऋतु में सफेद सूती वस्त्रों का अधिकतम प्रयोग करना चाहिए।

2) **विहार**–इस ऋतु में वृक्षों से भरे बाग–बगीचे में भ्रमण करना स्वास्थ वर्धक होता है क्योंकि इनमें सूर्य की किरणें सीधी धरती पर नहीं पहुँच पाती, अतः वहाँ अधिक गर्मी नहीं होती। रहने का स्थान विशेषकर शयन कक्ष, पानी के फव्वारे, पंखों, कूलर आदि से ठण्डा किया जा सकता है। रात के समय ऐसे स्थान पर सोना चाहिए जहाँ वातावरण ताजी हवा और चन्द्रमा की किरणों से ठण्डा होना चाहिए। आराम कुर्सी आदि पर बैठकर ठण्डी हवा का सेवन करना चाहिए। शरीर पर चन्दन का लेप करना चाहिए और मोतीयों के आभूषण पहनने चाहिए। क्योंकि मोती में शीतलता प्रदान करने का एवं उपचारात्मक प्रभाव होता है।

### 5.2.3.3 वर्षा ऋतु में आहार–विहार

वर्षा ऋतु श्रावण एवं भाद्रपद मास की ऋतु है जिनमें आकाश एवं दिशाएँ बादलों से युक्त हो जाते है और मेघ घिर कर बरसने लगते है। इस ऋतु में गर्मी, सर्दी, बरसात और बादल चारों मौसम देखने को मिलते हैं, इस कारण इस ऋतु को 'चौमासे' की संज्ञा भी दी जाती है। अंग्रेजी कलैण्डर के महीनों के अनुसार इसका काल 16 जुलाई से प्रारम्भ होकर 15 दिसम्बर तक होता है।

वर्षा ऋतु वात दोष के प्रकोप की ऋतु है। ग्रीष्म ऋतु में संचित वात दोष वर्षा ऋतु में प्रकुपित हो जाता है जिसके परिणामस्वरूप वात व्याधियाँ इस ऋतु में तेजी से मनुष्य शरीर को घेरती है। ग्रीष्म ऋतु में जठराग्नि दुर्बल हो जाती है। जबकि वर्षा ऋतु में वात दोष के कुपित होने के कारण पाचन तंत्र और अधिक दुर्बल हो जाता है। इस ऋतु में शरीर में पित्त दोष संचित होने लगता है।

1) **आहार**–वर्षा ऋतु में आहार के रूप में पुराना अनाज, शाली व साठी चावल, मक्का, मूँग व अरहर की दाल, लौकी, तुराई, भिण्डी, टमाटर की सब्जी, पुदीने की चटनी एवं पक्का भुट्टा का सेवन करना चाहिए। इसके साथ–साथ वर्षा ऋतु में केला, सेब, अनार एवं पके जामुन का सेवन करना चाहिए। वर्षा ऋतु में पके

आम का दूध के साथ सेवन करने से कफ और पित्त दोष सम बनते है और शरीर को पुष्टि मिलती है। इस प्रकार इस ऋतु में हल्के, सुपाच्य, ताजे गर्म और पाचक अग्नि को बढ़ाने वाले खाद्य पदार्थों का सेवन हितकारक है।

2) **विहार–**इस ऋतु में दिन में सोना, धूप में घूमना व सोना, अधिक मैथुन, अधिक पैदल चलना एवं अधिक शारीरिक व्यायाम भी हानिप्रद है।

### 5.2.3.4 शरद ऋतु में आहार–विहार–

यह ऋतु वर्षा ऋतु के बाद की ऋतु है जिसका प्रारम्भ अश्विन माह से होता है। यह ऋतु अश्विन मास से कार्तिक मास में होती है। अंग्रेजी कलैण्डर के महीनों के क्रम से इस ऋतु का काल 16 सितम्बर से प्रारम्भ होकर 15 नवम्बर तक होता है।

शरद ऋतु में सूर्य की उष्ण किरणों के प्रभाव से वर्षा ऋतु में संचित कफ प्रकुपित हो जाता है। वर्षा ऋतु के उपरान्त इस ऋतु में आसमान साफ एवं स्वच्छ हो जाता है। इस ऋतु में चन्द्रमा की शीतल किरणों का प्रभाव बढ़ जाता है जिससे कफ दोष को बल मिलता है। शरद विसर्ग काल में मध्य की ऋतु है, जिसमें शारीरिक बल भी मध्यम बना रहा है।

1) **आहार–**इस ऋतु में आहार शालि चावल, गेहूँ, जौ, मूँग, चौलाई, पालक, बथुआ, लौकी, मूली आदि का सेवन करना चाहिए। इस ऋतु में अनाज तिक्त पदार्थों को घृत के साथ पकाकर सेवन करने पित्त दोष कुपित नहीं होता है और शारीरिक बल श्रेष्ठ बनता है। इस ऋतु में हरीतकी चूर्ण सेवन शहद, मिश्री अथवा गुड़ के साथ सेवन करनी चाहिए तथा आँवले का सेवन शक्कर के साथ करना चाहिए। इस ऋतु के बारे में आचार्य ने पुनः कहा है कि–

**दिवा सूर्यांशुसंतप्तं निशि चन्द्राशुशीतलम्।**
**कालेन पक्वं निर्दोषमगस्त्येनाविषीकृतम्।।**
**हंसोदकमिति ख्यातं शारदं विमलं शुचि।**
**स्नानपानावगाहेषु शस्यते तद्यथाऽमृतम्।।**

**चरकसंहिता सूत्र स्थान, 6/46, 47**

अर्थात् दिन में सूर्य के किरणों से तपा हुआ, रात्रि में चन्द्रमा की किरणों से शीतल, समय से पके हुए अतः निर्दोष जल और अगस्त्य तारे के उदय होने से जो जल विष रहित हो गया उसे हंसोदक कहते है। शरद ऋतु का यह जल निर्मल और पवित्र होता है। इसका प्रयोग नहाने, पीने और यात्रा करने में अमृत के समान फल देने वाला है।

2) **विहार–** आयुर्वेद शास्त्र में शरद ऋतु को शरीर शोधन हेतु एवं योगाभ्यास प्रारम्भ करने का सर्वोत्तम समय है। इसके लिए इसे श्रेष्ठ ऋतु कहा गया है। इसके पश्चात् आचार्य ने कहा है कि–

**शारदानि च माल्यानि वासांसि विमलानि च।**
**शरत्काले प्रशस्यन्ते प्रदोषे चेन्दुरश्मयः।।**

अर्थात शरद ऋतु में उत्पन्न फूलों की माला, स्वच्छ कपड़े और रात्रि के प्रथम प्रहर (प्रदोष काल) में चन्द्रमा की किरणों का सेवन करना स्वास्थ्य के लिए लाभकारी होता है।

### 5.2.3.5 हेमन्त ऋतु में आहार–विहार

यह शरद ऋतु के बाद की ऋतु होती है जिसका प्रारम्भ मार्ग शीर्ष मास से होता है। यह ऋतु मार्गशीर्ष और पौष मास में होती है। अंग्रेजी कलैण्डर के महीनों के क्रम से इस ऋतु का काल 16 नवम्बर से प्रारम्भ होकर 15 जनवरी तक होता है। यह दक्षिणायन की अन्तिम ऋतु होती है। इस ऋतु में ही सूर्य दक्षिणायन से उत्तरायण में प्रवेश कर जाता है।

हेमन्त ऋतु में वात दोष का प्रकोप एवं कफ दोष का संचय होता है। अतः इस ऋतु में वात का शमन करने हेतु गुरु आहार का सेवन करना चाहिए।

1) **आहार–** इस ऋतु में शीतल वायु की अधिकता के कारण स्वाभाविक स्पर्श से जठराग्नि के रूक जाने के कारण स्वस्थ्य मनुष्यों के शरीर की जठराग्नि प्रबल हो जाती है और भारी द्रव्याहारों को पचाने में समर्थ हो जाती है–

**स यदा नेन्धनं युक्तं लभते देहजं तदा।**

**रसं हिनस्त्यतो वायुः शीतः शीते प्रकुप्यति।।**

**चरकसंहिता सूत्र स्थान, 6/10**

अर्थात् जठराग्नि के प्रबल हो जाने उसे आहार रूपी उचित ईधन प्राप्त नहीं होता है, तब वह जठराग्नि शरीर में उत्पन्न रस धातु का विनाश कर देती है तत्पश्चात् वायु का प्रकोप हो जाता है।

इसके पश्चात् आचार्य चरक ने कहा है कि–

**तस्मात्तुषारसमये स्निग्धाम्ललवणान् रसान्।**

**औदकानूपमांसानां मेद्यानामुपयोजयेत्।।**

**बिलेशयानां माँसानि प्रसहानां भृतानि च।**

**भक्षयेन्मदिरां शीधुं मधु चानुपिबेन्नरः।।**

**चरकसंहिता सूत्र स्थान, 6/11–12**

इसलिए तुषार काल अर्थात् हेमन्त ऋतु में स्निग्ध पदार्थ (घी, तेल और वसादि से युक्त) अम्लरस तथा लवण रस युक्त भोजन का तथा औदक मछली, कछुआ आदि का माँस, आनूप शूकर आदि के माँसों का सेवन करना चाहिए। बिलों में रहने वाले चूहादि, प्रसह कौआ, बाजादि पशु–पक्षियों का माँस भुने हुए माँस का सेवन करने के पश्चात् मदिरा (शराब) शहद और शीधु (ईख के रस से बनी शराब ) का सेवन करना चाहिए।

2) **विहार–**हेमन्त ऋतु में तेल मालिश, स्निग्ध पदार्थों से उबटन, सिर में तेल लगाना, जेन्तास्वेद विधि से स्वेदन करना, धूप का सेवन, उष्ण भूमिगृह (तहखाने) में तथा गर्म गर्भगृह (बीच वाले कमरें में निवास) करना चाहिए–

**अभ्यङ्गोत्सादनं मूर्ध्नि तैलं जेन्ताकमातपम्।**

**भजेद् भूमिगृहं चोष्ठामुष्णं गर्भगृहं तथा।।**

**चरकसंहिता सूत्र स्थान, 6/14**

इसके पश्चात् आचार्य चरक ने कहा है कि–

**शीतेषु संवृत्तं सेव्यं यानं शयनमासनम्।**

**प्रावाराजिनकी कौषेयप्रवेणी कुथुकास्तृतम्।।**

**गुरूष्णवासा दिग्धाङ्गो गुरुणाऽगुरुणा सदा।**

**शयने प्रमदां पीनां विशालोपचिततस्तनीम्।।**

**चरकसंहिता सूत्र स्थान, 6/15–16**

अर्थात् सर्दी में वाहन, सोने का कमरा एवं बैठने का स्थान चारों ओर से ढका रहना चाहिए। शय्या पर कब्बल, रजाई आदि व्याघ्र मृगादि का रोम वाले चर्म रेशमी वस्त्र जूट अथवा पट्टू से बने कपड़े रंग–बिरंगे कम्बल आदि बिछाकर रखना चाहिए। इसके साथ ही आचार्य ने कहा है कि–

**आलिङ्गचागुरूदिग्धाङ्गी सुप्यात् समथमन्मथः।**

**प्रकामं च निषेवेत मैथुनं शिशिरागमे।।** चरक संहिता सूत्रस्थान 6/17

अर्थात् शरीर पर भारी और गरम वस्त्रों को धारण करना, घिसे हुए अगुरु का काढ़ा लेप करना, विशाल स्तनों तथा अगुरू से लेपित अङ्गों वाली स्वस्थ मद से उत्पन्न पत्नी का आलिगन करके यथेष्ट कामक्रीड़ा (मैथुन) करना शीत ऋतु में लाभकारी होता है।

### 5.2.3.6 शिशिर ऋतु में आहार–विहार

यह शरद ऋतु के बाद की ऋतु होती है जिसका प्रारम्भ मार्गशीर्ष और पौष माघ में होती है। अंग्रेजी कलैण्डर के महीने के क्रम से इस ऋतु का काल 16 नवम्वर से प्रारम्भ होकर 15 जनवरी तक होता है।

सामान्य रूप से हेमन्त ऋतु और शिशिर ऋतु का प्रभाव यद्यपि समान ही रहता है, किन्तु शिशिर ऋतु में थोडी विशेषता होती है। इस ऋतु में आदान–प्रदान काल के आ जाने से रुक्षता, मेघ वायु तथा वर्षा होने के कारण सर्दी बढ़ जाती है। फिर भी हेमन्त ऋतु में जिस आहार–विहार का निर्देश किया गया था उसी का पालन करना चाहिए। विशेष रूप से वायु रहित तथा उष्ण घर में निवास करना चाहिए।

1) **आहार–**इस ऋतु में सुगन्धित चटनी, जिमीकन्द, पिठ्ठी की बनी पकौड़ी, अदरक का आचार, आँवले का मुरब्बा, तिल, गुड़, नारियल, खजूर, हींग, सैन्धव नमक, घृतयुक्त स्निग्ध भोजन, खिचड़ी पोषक तत्वों से युक्त पौष्टिक आहार का सेवन करना चाहिए। चूँकि इस काल में जठराग्नि तीव्र रहती है अतः इस समय रात्रिकाल में चने को भिगोकर प्रातःकाल सेवन करना चाहिए।

   **विहार–** इस ऋतु में शारीरिक बल उन्नत स्थिति में रहती है। अतः इस ऋतु में शारीरिक श्रम एवं कठिन आसनों का अभ्यास करना चाहिए। सूर्य नमस्कार

आदि योगासनों एवं उर्जा प्रदान करने वाले प्राणायामों का अभ्यास इस ऋतु में करना चाहिए। इससे स्वास्थ्य उत्तम रहता है।

**बोध/अभ्यास**

**बोध प्रश्न–1**

**क) निम्नलिखित प्रश्नों के ठीक उत्तरों पर सही (√) का चिन्ह लगाइयें**

i) आहार क्या है? (भोजन/भजन)

ii) विहार क्या है? (भ्रमण/नाचना)

iii) दिनचर्या क्या है? (दिन का कार्य/शाम का कार्य)

iv) रात्रिचर्या क्या है? (रात्रि का कार्य/शाम का कार्य)

v) मुखादिधावन क्या है? (मुख धोना/आँख धोना)

vi) नस्यकर्म क्या है? (मुख क्रिया/नाक क्रिया)

vii) क्षौरकर्म क्या है? (दाड़ी बाल बलवाना/नाखून काटना)

**ख) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।**

i) दिनचर्या में ..... उल्लेख हैं। (अभ्यंग/सोना )

ii) रात्रिचर्या में ..... उल्लेख हैं। (सोना/ जागना)

iii) ऋतुओं में ..... उल्लेख हैं। (हेमन्त/शीत/गर्म)

**बोध प्रश्न–2**

1) आहार–विहार हेतु स्वस्थ दिनचर्या में अभ्यंग कर्म क्या है।

.....

.....

.....

.....

2) आहार–विहार हेतु स्वस्थ दिनचर्या में नस्य एवं गण्डुष कर्म क्या है।

.....

.....

.....

.....

3) आहार–विहार हेतु स्वस्थ रात्रिचर्या में ब्रह्मचर्य क्या है।

.....

.....

.....

.....

**अभ्यास प्रश्न**

1) आहार–विहार हेतु स्वस्थ दिनचर्या, रात्रिचर्या एवं ऋतुचर्या को स्पष्ट कीजिए।

## 5.3 सारांश

रोग की चिकित्सा करने की अपेक्षा रोग को न होने देना ही अधिक श्रेष्ठ है और यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि चर्यात्रय अर्थात ऋतुचर्या, दिनचर्या तथा रात्रिचर्या के सम्यक् परिपालन से रोग का निश्चय ही प्रतिरोध होता है। श्रेष्ठ पुरुष स्वास्थ को ही सदा चाहते है अतः वैद्य को चाहिए कि मनुष्य जिस आहार–विहार के सेवन से सदा स्वस्थ रहे उसी आहार–विहार का सेवन कराये। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् अभी तक आप यह जान गए होंगें कि–

- स्वस्थ दिनचर्या में आहार–विहार के अन्तर्गत प्रातः उत्थान, उषा पान, मलोत्सर्ग एवं सफाई, दन्तधावन, जीभ प्रक्षालन एवं मुखादि धावन, नस्य, गण्डूष एवं अभ्यंग कर्म, क्षौर कर्म एवं शरीर परिमार्जन, स्नान एवं ईशध्यान, आहार, सदवृत्त या आचरण का ज्ञान इत्यादि।
- रात्रिचर्या में आहार–विहार के अन्तर्गत रात्रिकालीन आहार, निद्रा एवं ब्रह्मचर्य के बारे मे ज्ञान इत्यादि। ।
- विभिन्न ऋतु में बसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त एवं शिशिर ऋतु में सेवन करने योग्य आहार–विहार का अध्ययन किया जायेगा, जिसके माध्यम से सम्पूर्ण आयुर्वेदिक सिद्धांत के अन्तर्गत आहार–विहार के योगदान को स्वस्थ मनुष्य के जीवन में कितना महत्त्व है इत्यादि उपरोक्त का ज्ञान प्राप्त हुआ होगा।

## 5.4 शब्दावली

**आहार** – भोजन

**विहार** – घूमना

**दिनचर्या** – दिन में पालन योग्य आचरण

**रात्रिचर्या** – रात्रि में पालन योग्य आचरण

**प्रातः उत्थान** – सुबह जागना

**मलोत्सर्ग** – मल का त्याग करना

**दन्तधावन** – दाँत की सफाई

**जिह्वा प्रक्षालन**– जीभ को धोना

**मुहादि धावन** – मुँह को साफ करना

**नस्य** – नासिका

**सदवृत्त** – अच्छे आचरण

**स्निग्ध** – चिकना

**श्लेष्म** – कफ

| | | |
|---|---|---|
| **पथ्य** | — | हितकर |
| **व्याधि** | — | रोग |
| **गुरु** | — | भारी |
| **लघु** | — | हल्का |
| **उश्ण** | — | गर्म |
| **तीक्ष्ण** | — | तीखा |
| **तृशा** | — | प्यास |
| **दाह** | — | जलन |
| **तन्द्रा** | — | अधकच्ची नींद |

## 5.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें


- आयुर्वेद का संक्षिप्त इतिहास, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद
- आरोग्य अंक, गीता प्रेस गोरखपुर
- चरक संहिता प्रथम भाग, सम्पादक, एच॰सी॰ कुशवाहा, चौखम्बा ओरियन्टालिया, वाराणसी, 2009
- अंग्रेजी एवं संस्कृत शब्दकोश, एम॰ विलियन्स, मोतीलाल बनारसी दास पब्लिशर्स, प्रा॰ लि॰ 1991
- वाग्भट् अष्टांग संग्रह, के॰ आर॰ श्रीकण्ठ मूर्ति, चौखम्बा ओरियन्टालिया, वाराणसी, 2005
- आयुर्वेद दर्शन, वेदमाता गायत्री ट्रस्ट, शान्तिकुंज, 2005
- स्वास्थ रक्षक, पी॰ डी॰ पाण्डेय, निरोग धाम प्रकाशन, 2004
- आहार चिकित्सा, डॉ॰ अनीता सिंह स्टार पब्लिकेशन, आगरा
- आयुर्वेद सारसंग्रह, वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि॰
- वेदों में आयुर्वेद,कपिलदेव द्विवेदी, विश्वभारती अनुसन्धान परिषद् भदोही
- ऋतुचर्या, केन्द्रीय आयुर्वेदीय विज्ञान अनुसंधान परिषद् आयुष मंत्रालय
- आहार एवं पोषण, मंगला कान्यो मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल
- चरकसंहिता, Etext: http://www.charakasamhita.com
- V.B.Athavale, Basic Principle of AyurvedaChaukhamba Sanskrit pratishthan New Delhi, 2005


## 5.6 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

**बोध प्रश्न–1**

**क) (i) भोजन(ii) भ्रमण(iii) दिन का कार्य(iv)रात्रि का कार्य**

**(v) मुख का धोना (vi) नाक क्रिया (vii)दाड़ी–बाल बनवाना**

**ख) (i) अभ्यंग (ii)सोना(iii) हेमन्त**

**बोध प्रश्न–2**

**1)** अभ्यंग आयुर्वेदिक चिकित्सा का एक रूप है जिसमें शरीर को गुनगुने तेल से मालिश की जाती है। इसमें तेल की मात्रा अधिक होती है और उसमें कुछ औषधि भी मिलाई जाती है। अभ्यंग (मालिश) शरीर और मन की उर्जा का संतुलन बनता है, शरीर का तापमान नियंत्रित करता है इसके साथ ही रक्त प्रवाह और दूसरे द्रवों के प्रवाह में सुधार करता है। शरीर के सभी विषैले तत्त्व बाहर निकल जाते है।

**2)** **नस्य कर्म–**नस्य कर्म हेतु रोज सुबह 2–3 बूँद गरम करके ठण्डा किया हुआ सरसों या तिल का तेल नाकों में डालना चाहिए। नाक में तेल डालने से सिर, आँख, नाक के रोग नहीं होते। नेत्र ज्योति बढ़ती है। बाल काले–लम्बे होते हैं। समय से पूर्व न झड़ते एवं न सफेद होते है।

**गण्डूष कर्म–**गण्डूष कर्म हेतु मुख में असंचारी द्रव्य की मात्रा होती है और कवच उसे कहते है; जिसमें द्रव्य की मात्रा मुख दाये से बाये फेरी जाती है। इसके लिए तिल या सरसों के प्रयोग को उत्तम कहा गया है। गण्डूष से ओंठों का फटना, मुख का सूखना, दाँतों के रोग तथा स्वरादि भेद नहीं होता है। अरुचि, मुख की विरसता, मलिनता, दुर्गन्धता इत्यादि का नाश होता है।

**3)** सामान्य रूप से प्रजनन इन्द्रिय पर संयम को ब्रह्मचर्य के अर्थ के रूप में वर्णित किया जाता है। ब्रह्मचर्य का अर्थ शरीर की सबसे महत्त्वपूर्ण शुक्र धातु की संयमपूर्वक रक्षा करने से भी होता है। इस प्रकार ब्रह्मचर्य को विभिन्न अर्थों में अभिव्यक्त किया जाता है किन्तु मूल रूप से इसका आशय इन्द्रिय पर संयम रखते हुए शरीर की महत्त्वपूर्ण धातु की संयमपूर्वक रक्षा करना होता हैं।

**अभ्यास प्रश्न–**

इस प्रश्न का उत्तर विद्यार्थी स्वयं लिखें।